श्रीमद् राजचन्द्र जन्म जयंती विशेषांक

वार्षिक सदस्यता शुल्क - रु. २५/-

October - 2025

स्वानुभूतिप्रकाश

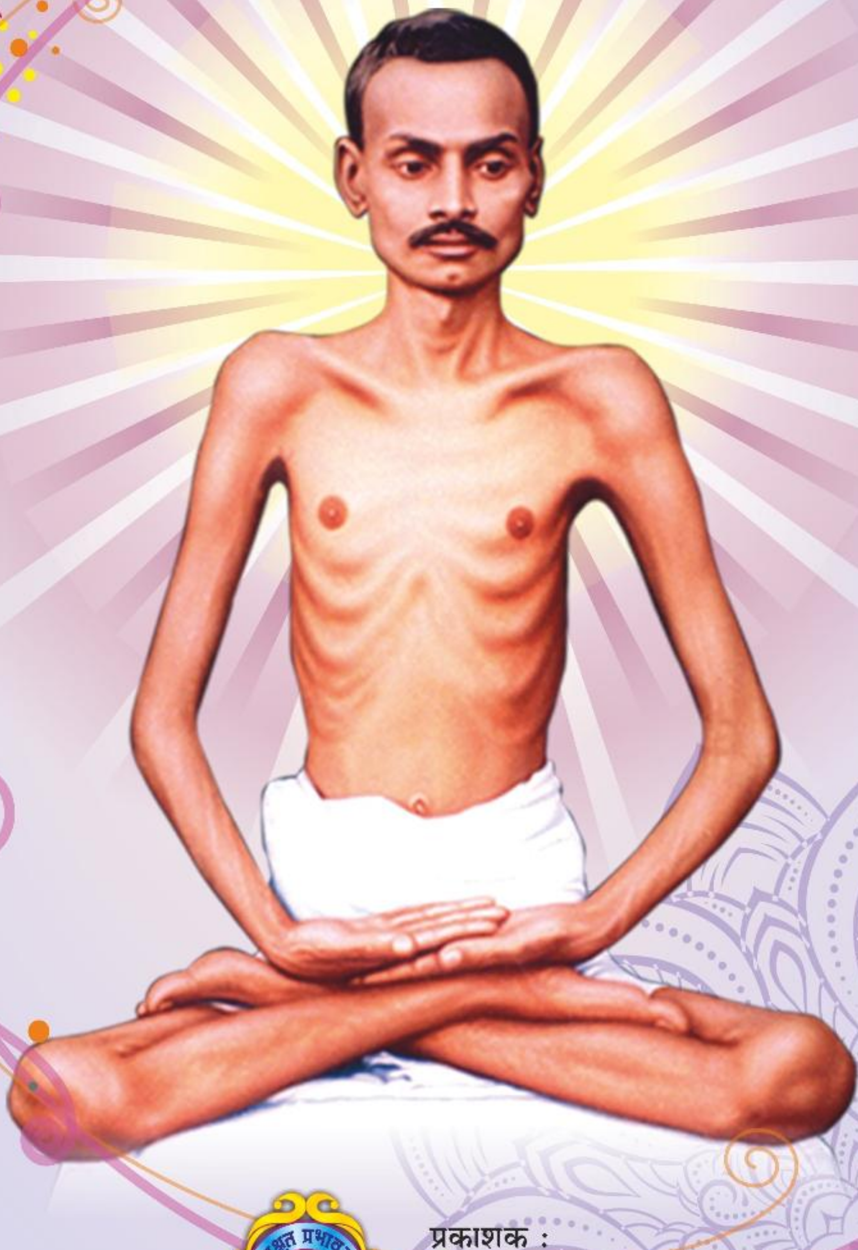

प्रकाशक :
श्री सत्‌श्रुत प्रभावना ट्रस्ट
भावनगर - ३६४ ००१.

परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजीकी जन्मजयंती (कार्तिक पूर्णिमा)के मंगल अवसर पर उनके चरणोंमें कोटि कोटि वंदन!!!

'श्रीमद राजचंद्रजी'की आज जन्मजयंती है न! बहुत निर्मल परिणति लेकर वैमानिकदेवमें गये हैं। वहाँसे मनुष्यक्षेत्रमें आकर चरम शरीर अवधारणकर निर्वाणपदको प्राप्त होंगे। मुनिदशा अंगीकार करके, संपूर्ण चारित्रकी सिद्धि करके निर्वाणपदको प्राप्त होंगे। अपने निर्मलज्ञानमें उन्हें ऐसा अवभासित हुआ है। एक अंगत काव्यमें इस बातकी प्रसिद्धि की है। 'धरीने एक ज देह जाशुं स्वरूप स्वदेश' अतः वर्तमान मुमुक्षु समाज पर, हज़ारों लोगों पर उनका उपकार वर्तता है।

– पूज्य भाईश्री शशीभाई

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५५१, अंक-३३४, वर्ष-२७, अक्टूबर-२०२५

परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी के प्रति पूज्य गुरुदेवश्रीके हृदयोद्गार

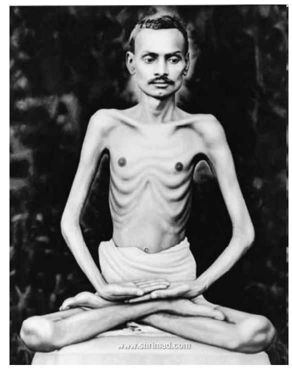

श्रीमद् राजचन्द्रजीने अपनी जन्मभूमि, ववाणिया (सौराष्ट्र) में प्रातःकाल अपनी माताश्रीकी शय्या पर बैठकर इस 'अपूर्व अवसर' नामक काव्यकी रचना की थी। (पन्ना-१)

*

पूर्ण शुद्धात्मस्वरूप सिद्ध परमात्मा जैसा है – ऐसा अपना स्वरूप लक्ष्यमें रखकर पूर्णताके लक्ष्यसे श्रीमद्, आत्मस्वरूपकी भावना करते हैं। (पन्ना-५)

*

श्रीमद्ने एक डेढ़ पंक्तिके चरणमें लिखा है कि कुन्दकुन्दाचार्य, आत्मस्वरूपमें बहुत दृढ़तासे स्थित थे। (पन्ना-७)

*

श्रीमद् राजचन्द्र, सम्यग्दृष्टि और आत्मानुभवी थे; इसलिए मुनित्वकी भावना भाते हैं। (पन्ना-१४)

*

श्रीमद्जीने ज्ञानसहित पुरुषार्थकी धारा व्यक्तकी है और ये २१ पद अविराम एक साथ लिखे गये हैं। इस ज्ञानस्वरूपकी एकाग्रता और उस समयकी विरलदशा कैसी होगी? अपूर्व साधनाका संस्कार कैसा होगा? इस प्रकारकी परम आश्चर्यकारी सद्विचार श्रेणी हो, तब कैसा परमार्थरूप काम हो सकता है?- ऐसे गम्भीर ज्ञानका विचार करो। क्या ऐसी अपूर्व बात किसी अन्यके पाससे आ सकती है? अरे! जिनकी बुद्धि मताग्रहसे मोहित है, उनको सत्यकी प्राप्ति नहीं होती।

लोग मध्यस्थभावसे तो विचार नहीं करते और केवल निन्दा करते हैं कि श्रीमद्ने अपने आपको पुजानेके लिए यह काव्य लिखा है किन्तु ऐसा कहनेवाले अपनी आत्मामें भयंकर अशातना करते हैं। भाई! उनका गृहस्थवेष देखकर विकल्पमें नहीं पड़ना चाहिए।

-ऐसी अपूर्वभावनाकी वाणीका अपूर्वयोग कोई लावे तो? तोता रटन्तसे यह सम्भव नहीं

है। जिनके सहजपुरुषार्थकी धारा प्रगट हो, उसको कोई नहीं कहता कि तुम इस समय अपूर्व अवसरकी भावनाका अन्तर्गत काव्य लिखो, किन्तु जिसके जिनदीक्षा(भगवती दीक्षा) का बहुमान हुआ, वहाँ आत्मा अन्तरंगसे ध्वनि करती हुई स्थिरतारूप पुरुषार्थकी माँग करती है। वह निवृत्ति, वैराग्यप्रवृत्ति धारण करनेका पुरुषार्थ होता है कि सर्वसंगविमुक्त जैसा हूँ, वैसा बनूँ। श्रीमद्ने इस प्रकार मुनित्वकी भावनाकी है।

वे घरमें हैं या वन में?- यह प्रश्न ही नहीं है। पूर्ण स्थिरताकी दृष्टि पुकारती है कि अब मैं कैसे पूर्ण होउँ? वर्तमान कालमें केवली भगवानका इस क्षेत्रमें अभाव है, वह विरह दूर होकर पूर्ण स्वरूपकी प्राप्तिका अपूर्व अवसर कैसे आवे - यह भावना की है।

कोई कहे कि श्रीमद् व्यापार करते थे, धनसंग्रह करते थे किन्तु हे भाई! बाह्यदृष्टि द्वारा इन पवित्र धर्मात्माके हृदयको परखना कठिन है क्योंकि वे गृहस्थवेषमें थे; इसलिए साधारण जीवोंको उनके अन्तरकी उज्ज्वलता देखना बहुत कठिन पड़ता है। समाजमें स्वच्छन्दता आदिका जोर था, उसमें सत्य बात किसे कहने जाए? उनके अन्तरमें सर्वज्ञ ज्ञानीका मोक्षमार्ग था किन्तु वे तत्कालीन समाजको देखकर अधिक प्रगटमें नहीं आये। लोगोंका पुण्य ही ऐसा नहीं था, इसमें दूसरा क्या हो सकता है? कालकी बलिकारी है! (पन्ना-२२,२३)

*

श्रीमद्ने ऐसे महत्पुरुष सर्वज्ञ भगवानके विरहको जानकर ऐसी भावना की थी। (पन्ना-२३)

*

श्रीमद् यहाँ स्वरूपकी स्थिरताका चिन्तन करते हैं; इस रूपमें वे अपने भाव व्यक्त करते हैं। उनके एक-एक शब्दमें अपूर्वता है, मांगलिकमें ही अपूर्वता है। वे अपूर्व साधकदशा (मुनिपर्याय) प्रगट होने की भावना भाते हैं। (पन्ना-२६,२७)

*

देखो तो सही! श्रीमद् राजचन्द्रने गृहस्थाश्रममें शैय्या पर बैठकर कैसी उत्तमभावना भायी है!! इस जातिका सैद्धान्तिक कथन तो कोई लाओ! (पन्ना-३१)

*

वह अपूर्व अवसर धन्य है जब देह, मात्र संयमके लिए ही हो। २९वें वर्षमें श्रीमद्ने ऐसी ही भावना भायी थी। (पन्ना-७३)

*

श्रीमद्जीने, अपनेको जैसी स्थिति प्रगट करना है, वैसी ही भावना की है। इस प्रकार उन्होंने वर्तमानमें मुनित्वकी तैयारी कर रखी थी; इसलिए एक भवके बाद साक्षात् सर्वज्ञ तीर्थंकर आदि किसी महापुरुषके पास मुनिपद धारण करेंगे और जिनाज्ञाका आराधन करते हुए स्वरूप-स्थिरता द्वारा अपने स्वरूप मोक्षको प्राप्त करनेवाले होंगे। वे इस निर्ग्रन्थदशा द्वारा जिनाज्ञाकी उपासना करते हुए पूर्णताको प्राप्त होंगे। कहा भी है -

अवश्य कर्मका भोग जो, भोगवनो अवशेष रे।

इससे देह एक ही धारकर, जाउँगा स्वरूप स्वदेश रे; धन्य रे दिवस यह अहो!

सूक्ष्मरूपसे अंतरंग परिणामोंका अध्ययन करनेसे ज्ञात होता है कि अभी कुछ कर्म भोगनेकी योग्यता बाकी है, इसलिए उन्हें क्षय करनेके लिए एक भव और धारण करना पड़ेगा – ऐसी अंतरंगमें प्रतीति करके ही श्रीमद्जीने ऐसा कहा है। कोई ऐसी अपूर्वताका सन्देश लाओ तो सही!

लोग पक्षपात छोड़कर मध्यस्थता एवं न्यायसे विचारें, तभी ज्ञानी धर्मात्माके हृदयको पहचान सकते हैं।

'धन्य रे दिवस अहो! जागी रे शान्ति अपूर्व रे।'

यह वाणी आत्माको स्पर्श करके आयी है। इस भावनाके बलसे सच्चे अभिप्रायका अभ्यास और पुरुषार्थ बढ़ाते हैं। (पन्ना-८३,८४)

*

इस वीतरागस्वरूप साधककी भूमिकामें बाह्यमें नग्न शरीर (निर्ग्रन्थ अवस्था) ही सहज निमित्त है – यह तीनों कालका नियम है। श्रीमद् राजचन्द्र उस नियमको जानते थे; इसलिए प्रारम्भमें सव्यं ही कहते हैं –

अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा,
कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जब।
सम्बन्धों का बन्धन तीक्षण छेद कर,
विचरूँगा कब महत्पुरुष के पंथ जब।। (पन्ना-८५)

*

गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी श्रीमद् राजचन्द्र कितनी उत्कृष्ट भावना भाते थे! उनके अंतरंगमें पवित्र उदासीनता, निवृत्तिभाव, मोक्षस्वरूपको प्राप्त करनेका उत्साह जागृत था। वह निर्ग्रन्थदशा-साधकदशा धन्य है, जो माहात्म्य करने योग्य हैं। (पन्ना-९३)

*

जिसे शरीरके प्रति अणुमात्र भी ममत्व नहीं है – ऐसे अशरीरीभावमें रहनेवाले धर्मात्माका भाव कितना उत्कृष्ट होता है, यह देखनेकी चीज है! अहो! विचार करो कि ऐसा विचार करते समय श्रीमद् जवाहरातके व्यापारमें थे या आत्मामें? (पन्ना-९६)

*

जिस समयमें श्रीमद्ने इस काव्यकी रचना की थी, उस समय उनका मुम्बईमें जवाहरातका व्यापार था किन्तु फिर भी सब परिग्रहसे निवृत्त होनेकी और उत्कृष्ट साधकदशाकी भावना भाते थे। इस काव्यका एक-एक शब्द गम्भीर भावार्थयुक्त है। वे महावैराग्यवान थे और पुरुषार्थ द्वारा मोक्ष/स्वभावदशा प्रगट करूँ – ऐसी भावनासहित स्वरूपस्थिरताकी आंशिक सावधानी रखकर मुनित्वकी भावना भाते हैं; (पन्ना-९६)

*

श्रीमद्ने कहा कि – सिंहने गला पकड़ा, तब ज्ञानीने अडोलस्थिरता (स्वरूपस्थिरता)

पकड़ी है। श्रीमद्ने संसारीवेषमें ऐसी भावना भायी कि कब मैं क्षपकश्रेणी पर चढ़कर अन्तर्मुहूर्तमें केवलज्ञान प्रगट करूँ। इस प्रकारका अपूर्व भाव कोई लाये तो सही!

इस प्रकार श्रीमद् तपश्चर्यामें भी उत्कृष्टता दर्शाते हैं। (पन्ना-९९,१०१)

*

घोर तपस्यासे शरीर जीर्ण हो जाए, जैसे सूखे कोयले अथवा लकड़ी गाड़ीमें भरे हों और वे खड़खड़ाएँ, वैसे ही छह-छह महीने उपवास सहज ही जो जाने पर शरीरकी हड्डियाँ बजने लगे - ऐसी मुनिपनेकी भावना श्रीमद् संसारमें रहते हुए करते थे। (पन्ना-१०४)

*

अनन्य चिन्तन द्वारा अतिशय शुद्ध अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूपमें मेरी लीनता बढ़ती जाए और उसमें आरूढ़ होकर क्षपकश्रेणी शुरू करूँ - ऐसा अवसर शीघ्र प्राप्त हो, यह भावना श्रीमद्ने इस पदमें की है। (पन्ना-१११)

*

देखो तो सही! श्रीमद् गृहस्थावस्थामें थे। उनकी २९ वर्षकी युवा अवस्था थी, फिर भी उनको अपनी भावनामें पूर्ण आत्माका भान और साधकस्वभावकी लगन थी। श्रीमद् पाँच वर्ष बाद ही समाधिमरण धारण करनेवाले थे। इस अपूर्व जागृतिका कैसा स्वरूप होगा? 'एक ही भवमें मोक्षस्वरूप प्रगट होगा' - ऐसी भावना, इस प्रकारका विश्वास और दृढ़तर उत्कृष्ट रुचि कैसी होगी? (पन्ना-१२२)

*

श्रीमद्को सातवें वर्षमें जातिस्मरण हुआ था। उनकी स्मरणशक्ति इतनी तीव्र थी कि कोई भी पुस्तक एक बार पढ़नेके बाद दुबारा पढ़नेकी आवश्यकता नहीं रहती थी। वे श्वेताम्बर सम्प्रदायके पैंतालीस आगमसूत्र बहुत थोड़े समयमें पढ़ गये थे और उन्हें दिगम्बर सत्शास्त्रोंका अच्छा अभ्यास था। जैन शासनका रहस्य उनके हृदयमें भरा हुआ था। ऐसी विशाल और तीक्ष्ण बुद्धिवाले श्रीमद् थे किन्तु बाह्यमें समाज स्थिति देखकर स्पष्टरूपमें लिखनेका अवसर नहीं आया। वे लोकसम्पर्कसे दूर रहना चाहते थे और निरन्तर स्वरूपकी सावधानीका विचार, शास्त्र-स्वाध्याय तथा गम्भीर मनन करते थे और भावना करते थे कि कब निवृत्ति लेऊँ? (पन्ना-१२६,१२७)

*

श्रीमद् राजचन्द्रने युवावस्थामें अपूर्व वैराग्य, उपशमभावसहित मोक्षपदकी प्राप्तिके लिए यथार्थ वीतरागस्वरूपकी भावनाकर बुद्धिका सदुपयोग किया था। (पन्ना-१३१)

*

श्रीमद् राजचन्द्रकी इस प्रकारकी भावना आन्तरिक स्थिरतापूर्वक करते थे। वह भावना एक भव बाद पूर्णता प्राप्त करनेकी है, इसका उन्हें पूर्ण विश्वास है। (पन्ना-१३७)

*

('अपूर्व अवसर' के प्रवचनमें से साभार उद्धृत)

एक आश्चर्यकी प्रतिमा– श्रीमद् राजचंद्र !!

(उनकी जन्मजयंती पर पूज्य भाईश्री द्वारा गुणानुवाद)

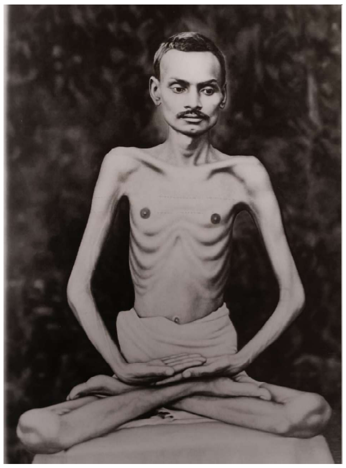

आज 'कृपालुदेव' की जन्म–जयन्तीका महोत्सव दिन है। यदि अपना परम सौभाग्य है कि ऐसे महापुरुष का जन्म–दिवस मनाने का सद्भाग्य अपने को प्राप्त होता है। वास्तविकरूप से तो उनका स्मरण करके, उनका गुणानुवाद, उनकी भक्ति, यह विशेष प्रकार से करने का आज दिवस है। उनके गुणों से उनका स्मरण करके उनके प्रति जो कुछ बहुमान हो, वह बहुमान वृद्धिगत हो – इस प्रकार आज का दिन व्यतीत होना चाहिए।

जब उनका स्मरण करते हैं, तब उनकी जो मुखमुद्रा है, उसका प्रथम ही निदिध्यासन होता है। भले ही वे अभी अपने समक्ष प्रत्यक्ष नहीं हैं, तथापि प्रत्यक्षवत् प्रतिभासित होते हैं। अपने चैतन्य प्रदेशों में उनकी मुद्रा अंकित होती है। **visualise** होती है – दिखती है।

अहो! उनकी मुद्रा! अहो! उनकी मुद्रा में प्रदर्शित होती है, गम्भीरता! उनका जो परम गाम्भीर्य है, वह उनकी मुद्रा में बहुत अच्छी तरह से प्रसिद्ध होता है, प्रदर्शित होता है। ऐसी एक असाधारण अपूर्वता उनमें दृष्टिगोचर होती है।

उनके वचनयोग के लिए तो दूसरों के वचन अपूर्ण और अल्प पड़ें – ऐसे हैं; उन्हें ऐसा कोई सातिशय वचनयोग प्राप्त था कि जिसका प्रमाण यह वचनामृत 'ग्रन्थ' अपने समक्ष है। इस वचनयोग से आज भी हजारों मनुष्य आकर्षित होते हैं। ऐसा कोई चमत्कार कहें, कोई ऐसा अतिशय कहें, कोई ऐसा लोकोत्तर जादू कहें – वह प्रकार उनके वचनयोग में प्रसिद्ध है। उनका दूसरे वचनों से प्रशंसा अथवा गुणानुवाद करना कम लगता है, अधूरा लगता है। जितना समझ में आता है, जितना अनुभव में आता है, उतना कहा नहीं जा सकता।

इस वचनयोग और इस वचनयोग द्वारा जो–जो मुमुक्षु आत्माएँ, उनके प्रत्यक्ष परिचय में आये, उनके प्रति उनकी जो परम करुणा, उनका उद्धार करने की जो निष्काम करुणा, वह करुणा भी उनके एक–एक पत्र में दृष्टिगोचर होती है। वह मात्र करुणा ही थी, इतना ही नहीं; अपितु वह एक लोकोत्तर विचक्षणता भी थी। जैसे, कोई कुशल वैद्य हो, एक्सपर्ट डॉक्टर हो और गम्भीर से गम्भीर रोगी को भी

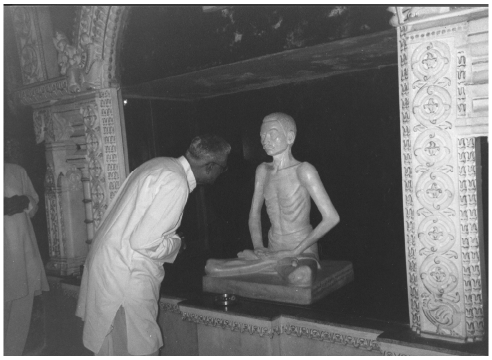
(परम कृपालुदेवको निहारते हुए पू. भाईश्री–सायला)

तन्दुरुस्ती के प्रति **stage by stage, stage by stage** ले जाए, इस प्रकार उनके परिचय में आये हुए मुमुक्षुओं को (कृपालुदेव) उनके आत्मा की उन्नतिक्रम में ले आते हैं।

यह प्रकार जो है – ऐसा प्रकार अनेक महात्माओं का इतिहास देखने पर भी, ऐसा लगता है कि इस प्रकार की विचक्षणता भाग्य से ही अनेक धर्मात्माओं में भी किन्हीं में होती है – ऐसे प्रकार की थी। अत्यन्त विचक्षणता! किसी भी मुमुक्षु से कितनी बात करना, कैसी बात करना, कितनी मात्रा में करना अथवा नहीं करना – ऐसी विचक्षणता, जिस–तिस मुमुक्षु की योग्यता को परखकर वे उसे जो ट्रीटमेन्ट/उपचार देते हैं, जो बोध देते हैं उसमें केवल सामनेवाले के आत्मकल्याण के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। इसके अतिरिक्त उनकी जो सरलता है, वह उनके पत्र में कोई असाधारणरूप से व्यक्त होती है। सरल परिणामी जीव कैसे होते है? और धर्मात्मा की सरलता कैसी होती है? इसके लिए यह ग्रन्थ है। यह एक असाधारण प्रमाण है, असाधारण साबिती है। अपने परिणाम की बात करना, यह असाधारण एवं अत्यन्त सरलता के बिना सम्भव नहीं है। प्रयोग करके देखने पर ख्याल में आवे ऐसा है कि आज भी हम सत्संग करते हैं तो उस सत्संग में अपने–अपने परिणामों की कितनी चर्चा करते है कि मुझे इतने दोष होते हैं, मुझे इस–इस प्रकार के परिणाम होते हैं – इसमें विपरीतता क्या है? इसमें हानि क्या है? इसमें कमियाँ क्या हैं? इन्हें किस प्रकार सुधारना चाहिए?

कृपालुदेव की, अपने परिणाम पत्र में लिखकर जो बोध देने की प्रणाली कहें, बोध देने की विधि कहें, रीति कहें, कार्य की पद्धति कहें – यह पद्धति अनुसरण करने योग्य है, अनुकरण करने योग्य है, जो कि प्राय: अनुसरण होती देखने में नहीं आती है। यह एक विशिष्ट प्रकार अंगीकार करने योग्य है और तभी हम उनके मार्ग में चले हैं। मात्र पढ़ लें, मात्र पढ़कर प्रशंसा कर लें, इतना ही नहीं होना चाहिए। वे किस प्रकार वर्तन करते हैं? अपने परिणाम की आध्यात्मिक परिस्थिति भी व्यक्त की है और ऐसा तो भाग्य से ही कोई व्यक्त करता है।

वास्तविक बात यह है कि जो कोई ज्ञानी पुरुष की ज्ञानदशा है, जो कुछ उनके आत्मगुणों का आविर्भाव हुआ होता है, वह तो उनकी सम्पत्ति है! वह उनकी कमाई है! वह उनकी पूँजी है! आज हम अपनी पूँजी किसी को बताते हैं? कि भाई! मेरे पास इतनी पूँजी है! कम हो तो भी कोई नहीं बताता और अधिक हो तो भी नहीं बताता। हाँ, बताते किन्हें हैं? अपने आत्मीयजन हों, अपने पिता हों, पुत्र हों, पत्नी हो उसे बताते हैं, अपने पास इतना है और अपने को तदनुसार चलाना चाहिए।

'कृपालुदेव' ने अपनी पूँजी/आत्मसम्पत्ति, पत्रों द्वारा व्यक्त की है, इससे लगता है कि उनकी

अपने परिचय में आनेवाले सुपात्र जीवों के साथ किस हद तक आत्मीयता थी। भाग्य से ही कोई धर्मात्मा ऐसी बात करते हैं, जो बातें इन्होंने अनेक पत्रों में की है और उसमें भी मुख्यरूप से सौभागभाई, जो इनके परम निकट सखा/मित्र थे, उनके पत्रोंमें विशेषरूप से की है। यह एक सौभागभाई का भी उपकार है कि जिनके संयोग के कारण, जिनके योग के कारण कृपालुदेव की अभ्यन्तर दशा/आत्मदशा प्रसिद्ध हुई और इस प्रकार अपने को कृपालुदेव को उनके अन्तरंग से समझने का एक अवसर प्राप्त हुआ। यह उनकी असाधारण अत्यन्त – अत्यन्त सरलता का प्रमाण है।

उनकी नम्रता का विचार करें तो भाग्य से ही ऐसा उदाहरण देखने को मिलेगा। ऐसे वचन और कथन भाग्य से ही देखने को मिलेंगे – ऐसा प्रकार इस ग्रन्थ में प्रसिद्ध है।

इस विषय में उनका पत्रांक ५३९ विचारने योग्य है। इस प्रकार कृपालुदेव के गुणगान करें तो एक घण्टा तो कम पड़े – ऐसा है। अन्य पदार्थ में जीव यदि निजबुद्धि करे तो परिभ्रमण दशा प्राप्त करता है, और निज में निजबुद्धि हो तो परिभ्रमणदशा दूर होती है। संसार की चार गतियों को एक वचन में समाहित कर दिया है। वचन के अर्द्धभाग में समाहित की है और मोक्षगति – पंचमगति प्राप्त करने को शेष आधा वचन कह दिया है। यह वचनयोग का सामर्थ्य है। एक वचन में कारण–कार्यसहित संसार – मोक्ष कहा है। 'जिसके चित्त में ऐसा मार्ग का विचार करना आवश्यक है...' कि मेरा परिभ्रमण मिटना चाहिए और निज में निजबुद्धि करके परिभ्रमण से मुक्त होना चाहिए, उसे क्या करना? (कि) उसको, 'जिसके आत्मा में यह ज्ञान प्रकाशित हुआ है...' वैसे ज्ञानी पुरुष की – वैसे सत्पुरुष की... 'दासानुदासरूप से अनन्य भक्ति करना ही परमश्रेय है।' परम कल्याण है।

अब उनकी असाधारण नम्रता का प्रमाण है। इतने अनुसंधान के बाद लिखते हैं '...उस दासानुदास भक्तिमान की भक्ति प्राप्त होने पर जिसमें कोई विषमता नहीं आती, उस ज्ञानी को धन्य है।' क्या कहा? ज्ञानी पुरुष, कि जो ज्ञानी पुरुष की दासानुदासरूप से भक्ति करते हों, उनकी भी भक्ति करें और फिर भी विषमता अर्थात्... inferiority of complex उत्पन्न न हो! कि अरे! दासानुदास की भक्ति ज्ञानी किस प्रकार करे? ज्ञानी की भक्ति तो उनके दास और भक्त अवश्य करें – यह तो एक साधारण बात है, सामान्य बात है, सम्भवित बात है; परन्तु दासानुदास भक्तिमान की भक्ति प्राप्त होने पर जिसमें कोई विषमता नहीं आती, विकल्प उत्पन्न नहीं होता कि 'इसमें मेरे मान–अपमान का सवाल क्या है'– लोग मुझे किस प्रकार से देखेंगे? क्या समझेंगे? उस ज्ञानी को धन्य है। इस प्रकार, इस अभिप्राय से ज्ञानी ज्ञानदशा को प्राप्त हुए होते हैं उन्हें कभी भी, कहीं भी मान–अपमान की कल्पना नहीं होती है। 'उतनी सर्वांशदशा जब तक प्रगट न हुई हो, तब तक आत्मा की कोई गुरुरूप से आराधना करे, वहाँ पहले उस गुरुपने को छोड़कर उस शिष्य में अपनी दासानुदासता करना योग्य है।' देखो! नम्रता का प्रमाण! ऐसे वचन अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलते। जब यह वचन सामने आते हैं, तब अहो! उनकी नम्रता! ऐसा आश्चर्यकारक भाव हुए बिना नहीं रहता। इसलिए उनकी गवेषणा;

गवेषणा अर्थात् सत्य की खोज; उन्होंने किस प्रकार से सत्य की खोज की और परम सत्य को प्रसिद्ध किया, प्रगट किया!

अहो! उनका श्रद्धान! वर्तमान पंचम काल एक ऐसा काल है कि जिसे शास्त्रकार 'हुण्डावसर्पिणीकाल' कहते हैं। जैसे, सर्प सीधा नहीं चलता; उसी प्रकार यह काल सीधा नहीं चलता, अर्थात् धर्मात्मा हों, कोई भी हो; उन्हें भी बाहर के संयोगों का उतार-चढ़ाव हुआ ही करता है। ऐसे अनेक प्रकार के पूर्वकर्म के चित्र-विचित्र उदय आने पर भी जिनका अविचल श्रद्धान ऐसा का ऐसा अविचल रहता है - ऐसे उनके अविचल श्रद्धान को यदि लक्ष्य में लिया जाए तो उनके प्रति हृदय नम्रीभूत हुए बिना नहीं रह सकता।

अहो! उनका निरावरण ज्ञान! ज्ञान तो ज्ञान है, परन्तु ज्ञान में दो प्रकार हैं - आवरणसहित का ज्ञान और निरावरणज्ञान। ज्ञानी पुरुष का ज्ञान भ्रान्तिरहित हुआ होने के कारण वह ज्ञान, निरावरणपने को प्राप्त हुआ है। जिसे केवल अपने परमात्मस्वरूप में आत्मबुद्धि वर्तती है और देहादि से तथा रागादि से भिन्नपना वर्तता है - ऐसा जो निरावरणज्ञान है, जो कि केवलज्ञान का साधक है, वह ज्ञान भी 'कृपालुदेव' में अतिशयरूप से प्रकाशमान हुआ था और वह उनके वचनयोग से भलीभाँति समझा जा सकता है।

अहो! उनकी समाधि! उपाधि में भी समाधि! पूर्वकर्म के योग से बाहर में अनेक प्रकार का उपाधियोग वर्तता था। पत्रों में जो विषय आया है, वह बहुत अल्पांश आया है, परन्तु उससे कितना ही अनुमान करें तो स्पष्ट ख्याल में आता है कि अनेक प्रकार के उपाधियोग में से वे गुजरते थे, तो भी उनकी आत्मसमाधि ऐसी की ऐसी रहती थी। (एक पत्र में वे लिखते हैं कि) 'हम जो कुछ करते हैं, वह कुछ लेने के लिए नहीं करते हैं। जगत् के जीव व्यवसाय करते हैं, वे कुछ लेने के लिए करते हैं, जब कि हम कुछ करते हैं, वह देने के लिए करते हैं।' अर्थात् जो पूर्वकर्म का कर्ज है, वह कर्ज चुकाते हैं। प्रामाणिकरूप से कर्ज चुकाते हैं। कर्ज किया हो और उसे न चुकाने की मंशा हो, उसमें प्रामाणिकता नहीं है। ऐसी एक लोकोत्तर प्रामाणिकता के दर्शन, उनके उदय प्रसंगों में, उन उदय प्रसंगों में उन्हें वर्तनेवाली आत्मसमाधि, उस समाधि से उनका जीवन - उनका परिणमन - इसका दर्शन अपने को होता है।

अहो! उनकी परम जागृति! (वे) आत्मस्वरूप में निरन्तर जागृत हैं - ऐसे जो ज्ञानी पुरुष हैं, उन्हें धन्य है। वे निरन्तर जागृत हैं। कोई यह कहे कि निरन्तर जागृत कैसे रहा जा सकता है? ऊँघ आ जाए - निद्रा आ जाए, उसमें किस प्रकार जागृत रहें? यह निद्रा आवे तो भी उनकी अन्तर परिणति में वर्तती जो ज्ञानधारा है, जो सर्व गुणांशरूप सम्यक्त्व है। ज्ञानधारा अर्थात् मात्र ज्ञान की परिणति, इतना ही नहीं। यहाँ ज्ञानधारा कहने से आत्मा के सर्व गुण यथासम्भव शुद्धि को प्राप्त हुए हैं - ऐसी जो, उनकी अलौकिकदशा होती है, वह दशा निरन्तर चालू रहती है। यह समझा जा सके - ऐसा विषय है, न

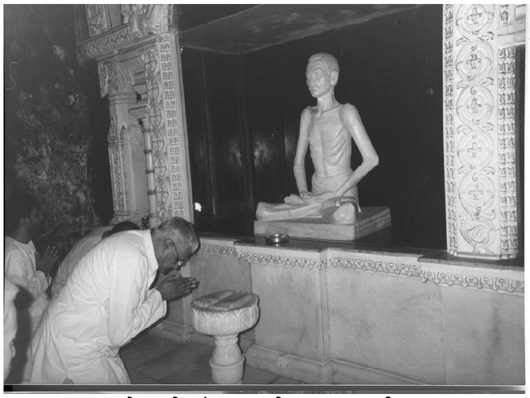

(परम कृपालुदेवको वंदन करते हुए पू.भाईश्री-सायला)

समझा जा सके – ऐसा विषय नहीं है।

अपन सो जाते हैं, नींद आती है, परन्तु कोई अचानक आवाज़ दे तो क्यों होंकार दे देते हैं? नींद में कैसे पता पड़ा कि कोई अपने को बुलाता है? परन्तु अपना जो कोई देहात्मबुद्धिरूप परिणमन चलता है कि 'मैं अमुक-अमुक हूँ!' वह भ्रान्ति निवृत्त होकर 'मैं एकमात्र ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ,' चैतन्यस्वरूपी हूँ, आत्मा हूँ – जिसकी ऐसी अपूर्व आत्मरस से परिणति हुई है, वह परिणति निरन्तर चालू रहती है। जैसे, अज्ञानी को अज्ञानदशा की चालू रहती है, वैसे ही ज्ञानी को ज्ञानदशा की चालू रहती है। ऐसी उनकी अन्तर की जागृति से भी उनके दर्शन करना योग्य है।

अहो! उनका वैराग्य! वैराग्य तो झरता वैराग्य था। जैसे, कोई कपड़ा पानी में डालकर बाहर निकाला जाए तो अधिक पानी नितरने/झरने लगता है। एक पत्र में वे स्वयं लिखते हैं कि 'हमारे अंग में इतना वैराग्य है कि हमारे संग में आये हुए को त्याग करना, संयम पालना, वैराग्य आना – यह तो सहज हो जाता है' और इसीलिए अपन उन्हें बोधस्वरूप से देखते हैं। आज अपन उन्हें एक मनुष्यरूप में नहीं देखते। भले ही सामान्यजनों के लिए वे एक १२७ वर्ष पहले 'ववाणिया' में मनुष्यरूप में जन्म पाये हों, परन्तु जो उन्हें पहिचानते हैं, वे तो उन्हें 'बोधस्वरूप' देखते हैं। बोधस्वरूप अर्थात् जिनके सत्संग में आनेवाले को स्वयं सहज उनकी परिणति देखकर बोध की प्राप्ति होती है, कहना नहीं पड़ता। इनके संग में मौनपने रहे, बोले तब की बात तो अलग ही है; परन्तु न बोलते हों, मौन रहते हों, तब भी उनके संग में रहनेवाले को स्वयं बोध की प्राप्ति होती है – ऐसा उनका अंग था, ऐसा उनका अन्तरंग था, ऐसा उनका बहिरंग था। वे अन्तर-बाह्य वैराग्य की मूर्ति थे – ऐसा कहना चाहिए।

उनकी वीतरागता! यह वैराग्य, मात्र शुभभावरूप नहीं था – यह दर्शाना आवश्यक है। वैराग्य दो प्रकार का होता है। कितने ही संयम और त्याग के शुभभाव उत्पन्न होते हैं, उसे भी वैराग्य कहते हैं। मुमुक्षु की भूमिका में आत्मकल्याण की तीव्र भावना से उदय के नीरस परिणाम होते हैं, उसे भी वैराग्य कहते हैं; परन्तु यह वैराग्य मुमुक्षुदशा का नहीं, ज्ञानदशा का है। मुमुक्षुदशा का वैराग्य अलग होता है, ज्ञानदशा का वैराग्य अलग होता है और मुनिदशा का वैराग्य भी अलग होता है। इन अलग-अलग दशाओं के स्तर से वैराग्य की भूमिका भी अलग-अलग होती है।

इनका जो वैराग्य था, वह वीतरागतासहित था। इनकी जो आत्मस्वरूप से और सहज स्वभाव से उत्पन्न हुई जो वीतरागता, उस वीतरागता के साथ इनके अन्तर-बाह्य वैराग्य का सुमेल था; इसलिए जैसे कोई सुवर्ण को गेरु चढ़ाई जाए, गहनों को अनेक प्रकार के केमिकल्स से, रसायनों से विशेष

पॉलिश की जाए और वे चमक उठते हैं, उनका तेज प्रगट होता है; उसी प्रकार वीतरागता से उत्पन्न हुआ वैराग्य विशेषरूप से प्रकाशित होता है। यह उनका दिव्य वैराग्यपना और तेजस्वीपना उसमें प्रसिद्ध होता है।

अहो! उनकी शान्ति! उतने सब गुण हों, तब आत्मशान्ति, यह तो जो परिणमन का प्रयोजन है, वह इसमें मुख्य होता ही है। वे किन्हीं भी प्रसंगों में अपने धैर्य को नहीं गँवाते हैं। उनकी धीरज भी आश्चर्यकारक होती है। यह धैर्य और शान्ति से उनका जो परिणमन है, वह भी हृदय से अवलोकन करने योग्य है और दर्शन करने योग्य है।

'भक्ति' का निरूपण तो 'कृपालुदेव' ने इतना सुन्दर और इतना सरस किया है कि आत्मस्वरूप की, आत्मपरिणामों की, आत्मस्वभाव की परखपूर्वक यदि मुमुक्षु को भक्ति प्रगट हो तो वह क्षणभर में मोक्ष दे – ऐसा पदार्थ है। इतना भक्ति का निरूपण किया है। कोई यह समझता है कि यह तो 'भक्ति' नाम का एक राग है। जैसे, दूसरे राग होते हैं, ऐसा यह भी एक विकल्प है – परन्तु कृपालुदेव को भक्ति शब्द में इतनी हल्की बात नहीं करना है। 'भक्ति' शब्द द्वारा उनका जो कुछ निरूपण करने का अभिप्राय और भाव रहा हुआ है, वह बहुत गहरा और गम्भीर है। उन्होंने भक्ति के द्वारा ज्ञान की दशा को व्यक्त किया है।

भक्ति, वह राग की पर्याय नहीं, परन्तु वस्तुतः तो ज्ञान की पर्याय है। जिस ज्ञान में – जिस समझ में मूल्यांकन होता है, जिसमें भाव-भासन आता है और उस कारण जो बहुमान प्रगट होता है – ऐसे जो बहुमान युक्त ज्ञान के परिणाम हैं, उन्हें वे भक्ति कहना चाहते हैं और उनका उस भक्ति का निरूपण असाधारण तथा अलौकिक है। भाग्य से ही ऐसा निरूपण अन्य ग्रन्थों में देखने में आयेगा। उन्होंने ऐसा निरूपण स्थान-स्थान पर किया है।

इस प्रकार 'कृपालुदेव' जैसे महापुरुष १२७ वर्ष पूर्व 'वणाणियाँ' में पधारे... तैंतीस वर्ष साढ़े पाँच माह की अल्प आयुष्य लेकर आये तो भी इतने से काल में जो कुछ पत्र संचित रह गये तो भी इतना बड़ा ग्रन्थ हुआ है, तो यदि सभी पत्र और इनका समस्त लेखन रह गया होता तो...! इनके कम समय में भी इनका चिन्तवन, इनका परिणमन कितना विशाल, ...कितना गहरा था। यह विशेष ख्याल में आता है। यह तो नमूना है।

इसलिए जिस क्षेत्र में उन्होंने विचरण किया है, वह क्षेत्र भी धन्य है! जिस गाँव में उनका जन्म हुआ है, वह गाँव भी धन्य है! 'वावाणियाँ'! ववाणियाँ में जन्म हुआ है। आप भी (वह) एक तीर्थस्थल है। वस्तुतः तो ज्ञानी पुरुष जहाँ-जहाँ विचरण करते हैं। वह तीर्थ हैं...! और जहाँ-जहाँ उनका स्पर्श होता है, वह आसन, वह शय्या सब धन्य हैं... इतना उनके विषय में संक्षेप में (गुणानुवाद) है।

*

महावीर भगवानका शासन जयवंत वर्तो !!

- प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन

प्रश्नः- आज वीरनिर्वाणदिनके प्रसंग पर कृपया दो शब्द कहिये।

उत्तरः- श्री महावीर तीर्थाधिनाथ आत्माके पूर्ण अलौकिक आनन्दमें और केवलज्ञानमें परिणमते थे। आज उनने सिद्धदशा प्राप्त की। चैतन्यशरीरी भगवान आज पूर्ण अकम्प होकर अयोगीपदको प्राप्त हुए, चैतन्यपिण्ड पृथक् हो गया, स्वयं पूर्ण चिद्रूप होकर चैतन्यबिंबरूपसे सिद्धालयमें बिराज गये; अब सदा समाधिसुख-आदि अनन्तगुणोंमें परिणमन करते रहेंगे। आज भरतक्षेत्रसे त्रिलोकीनाथ चले गये, तीर्थंकरभगवानका वियोग हुआ, वीरप्रभुका आज विरह पड़ा। इन्द्रोंने ऊपरसे उतरकर आज निर्वाणमहोत्सव मनाया। देवों द्वारा मनाया गया वह निर्वाणकल्याणकमहोत्सव कैसा दिव्य होगा! उसका अनुसरण करके आज भी लोग प्रतिवर्ष दिवालीके दिन दीपमाला प्रज्वलित करके दीपावलीमहोत्सव मनाते हैं।

आज वीरप्रभु मोक्ष पधारे। गणधरदेव श्री गौतमस्वामी तुरन्त ही अंतरमें गहरे उतर गये और वीतरागदशा प्राप्त करके केवलज्ञान प्राप्त किया। आत्माके स्वक्षेत्रमें रहकर लोकालोकको जाननेवाला आश्चर्यकारी, स्वपरप्रकाशक प्रत्यक्षज्ञान उन्हें प्रगट हुआ, आत्माके असंख्य प्रदेशोंमें आनन्दादि अनन्त गुणोंकी अनन्त पूर्ण पर्यायें प्रकाशमान हो उठीं।

अभी इस पंचम कालमें भरतक्षेत्रमें तिर्थंकर भगवानका विरह है, केवलज्ञानी भी नहीं हैं। महाविदेहक्षेत्रमें कभी तीर्थंकरका विरह नहीं होता, सदैव धर्मकाल वर्तता है। आज भी वहाँ भिन्न-भिन्न विभागोंमें एक-एक तीर्थंकर मिलाकर बीस तीर्थंकर विद्यमान हैं। वर्तमानमें विदेहक्षेत्रके पुष्कलावतीविजयमें श्री सीमंधरनाथ विचर रहे हैं और समवसरणमें बिराजकर दिव्यध्वनिके स्त्रोत बहा रहे हैं। इसप्रकार अन्य विभागोंमें अन्य तीर्थंकरभगवन्त विचर रहे हैं।

यद्यपि वीरभगवान निर्वाण पधारे हैं तथापि इस पंचम कालमें इस भरतक्षेत्रमें वीरभगवानका शासन प्रवर्त रहा है, उनका उपकार वर्त रहा है। वीरप्रभुके शासनमें अनेक समर्थ आचार्यभगवान हुए जिन्होंने वीरभगवानकी वाणीके रहस्यको विविध प्रकारसे शास्त्रोंमें भर दिया है। श्री कुन्दकुन्दादि समर्थ आचार्यभगवंतोंने दिव्यध्वनिके गहन रहस्योंसे भरपूर परमागमोंकी रचना करके मुक्तिका मार्ग अद्भुत रीतिसे प्रकाशित किया है।

(अनुसंधान पृष्ठ संख्या १७ पर...)

विषमकालके महावीर !!!

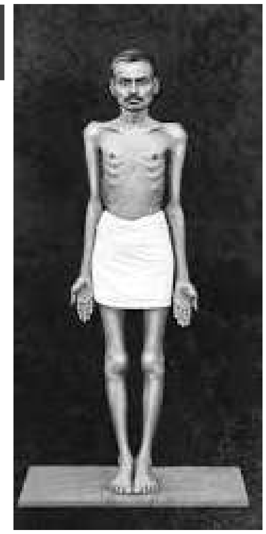

ॐ बंबई, चैत्र सुदी १३, १९५२

जिसकी मोक्षके सिवाय किसी भी वस्तुकी इच्छा या स्पृहा नहीं थी और अखंड स्वरूपमें रमणता होनेसे मोक्षकी इच्छा भी निवृत्त हो गई है, उसे हे नाथ! तू तुष्टमान होकर भी और क्या देनेवाला था?

हे कृपालु! तेरे अभेद स्वरूपमें ही मेरा निवास है वहाँ अब तो लेने-देनेकी भी झंझटसे छूट गये हैं और यही हमारा परमानंद है।

कल्याणके मार्गको और परमार्थस्वरूपको यथार्थतः नहीं समझनेवाले अज्ञानी जीव, अपनी मतिकल्पनासे मोक्षमार्गकी कल्पना करके विविध उपायोंमें प्रवृत्ति करते हैं फिर भी मोक्ष पानेके बदले संसारमें भटकते हैं; यह जानकर हमारा निष्कारण करुणाशील हृदय रोता है।

वर्तमानमें विद्यमान वीरको भूलकर, भूतकालकी भ्रांतिमें वीरको खोजनेके लिए भटकते जीवोंको श्री महावीरका दर्शन कहाँसे हो?

हे दुषमकालके दुर्भागी जीवों! भूतकालकी भ्रांतिको छोड़कर वर्तमानमें विद्यमान महावीरकी शरणमें आओ तो तुम्हारा श्रेय ही है।

संसारतापसे संतप्त और कर्मबंधनसे मुक्त होनेके इच्छुक परमार्थप्रेमी जिज्ञासुजीवोंकी त्रिविध तापाग्निको शांत करनेके लिए हम अमृतसागर हैं।

मुमुक्षुजीवोंका कल्याण करनेके लिये हम कल्पवृक्ष ही है।

अधिक क्या कहें? इस विषमकालमें परमशांतिके धामरूप हम दूसरे श्री राम अथवा श्री महावीर ही हैं, क्योंकि हम परमात्मस्वरूप हुए हैं।

यह अंतर अनुभव परमात्मस्वरूपकी मान्यताके अभिमानसे उद्भूत हुआ नहीं लिखा है, परन्तु कर्मबंधनसे दुःखी होते जगतके जीवों पर परम करुणाभाव आनेसे उनका कल्याण करनेकी तथा उनका उद्धार करनेकी निष्कारण करुणा ही यह हृदयचित्र प्रदर्शित करनेकी प्रेरणा करती है।

ॐ श्री महावीर (निजी) (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-६८०)

*

'भगवान महावीरका प्रताप!'

...वर्तमानमें हमलोगोंके लिए यदि विचार करें तो जो भी आत्मकल्याणके मार्गमें उपलब्ध साधन हैं, जो भी प्रकाशित साहित्य हैं, ज्ञानियों हुए वह भले ही अल्प हों किन्तु मोक्षमार्गकी प्राप्ति हेतु पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है, जो भी है यह भगवानका 'महावीर भगवान' जो तीर्थप्रवर्तक हुए उन्हींका प्रताप हैं, उन्हींका प्रभाव हैं। – पूज्य भाईश्री शशीभाई

(प्रवचनांश...श्री 'अध्यात्म सुधा' भाग-३, प्रवचन क्र.-६८, दिनांक-१२-४-१९८७, पन्ना क्र.-६४)

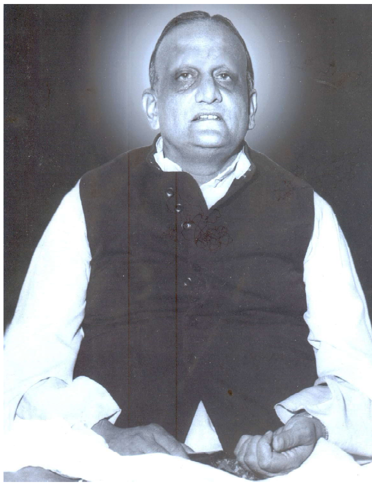

‘मार्गदर्शन’

– ‘द्रव्यदृष्टि प्रकाश’ – पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी

प्रश्न : नज़रमें तो पर पदार्थ आते हैं, स्व वस्तु नज़रमें नहीं आती, तो क्या करना?

उत्तर : जिस क्षेत्रमें नज़रका परिणमन हो रहा है, उसी आखे के आखे (पूरे के पूरे) क्षेत्रमें वस्तु पड़ी है। जहाँसे नज़र उठती है...वही वस्तु है। अतः नज़र जहाँसे उठती है... वहीं वस्तुको ढूँढ़ लो! ४५८.

*

जिस चीज़को पकड़नी है उसको पहले पूरी समझ लेनी (यथार्थ निर्णय कर लेना) **चाहिए। ४६४.**

*

ध्रुवतत्त्वको समझनेके लिए पर्यायके सिवाय अन्य कोई उपाय नहीं है, इसीलिए पर्यायसे सभी बातें कहनेमें (समझानेमें) आती हैं। ४६६.

*

पहले तो असली (निरपेक्ष) **बात नक्की कर लो, फिर अपेक्षित बातोंका खतियान कर लो। एक ओर, परद्रव्यका चिंतन रागका कारण बतावें; दूसरी ओर, केवलीके द्रव्य-गुण-पर्यायका चिंतन मोहक्षयका कारण बतावें; – सो परद्रव्यका चिंतन रागका कारण है, यह तो ‘सिद्धांत’ है; और मोहक्षयका कारण तो ‘निमित्तकी अपेक्षा’से बताया है। ऐसे सभी जगह ‘निरपेक्ष’ बात निश्चितकर, फिर ‘अपेक्षित’ बातको समझ लेना है। ४७३.**

*

असलमें सुनने आदिका रस कम हो जाना चाहिए, – वह कम कब होगा? कि – जब अंदरका रस बढ़ता जावे तभी उधरमें रस कम होता जाता है। (इसलिए) **शुरूसे ही उधरमें** (सुनने आदिमें) **ज़ोर नहीं आना चाहिए।** (मुमुक्षु जीवको शुभभावमें रस आता है, वह भी विभावरस ही है। सिद्धांत तो यह है कि कहीं भी (शुभाशुभभावमें) विभावरस तीव्र नहीं होना चाहिए। अतः ऐसी समझपूर्वक अत्यंत सावधानी रहनेसे, उक्त प्रतिबंधक रस तीव्र न होनेसे, अंतर्स्वभावरस उत्पन्न होनेका अवकाश बनता है; और वैसे अवकाशसे अंतर्स्वभावरस आविर्भूत होनेकी प्रक्रिया संभवित है।) **४८९.**

*

परमात्मासे शवकी सेवा क्यों ?!!

– पूज्य भाईश्री शशीभाई

'आत्माको ही एक मुख्य रखकर उनके सभी कार्य होते हैं।' प्रत्येक कार्यमें आत्माको मुख्य रखते हैं। जैसे मानो पैसे कमाने जाना पड़ता है तो उसवक्त भी जितना हो सके जल्दीसे कमाना बंद कर देना है। कमाना पड़ता है, परिस्थिति कोई ऐसी हो तो ठीक है परन्तु शौकसे कमाना नहीं है। कब यह प्रवृत्ति बंद हो और निवृत्ति ले लूँ! ऐसे हेतु सहित कमाना है। खानेकी क्रिया आम है तो खाते समय ऐसा भाव रहता है कि, यह खाना पड़ता है, वरना आत्माको (मुझे) क्या प्रयोजन? इसमें आत्माको (मुझे) क्या मिलता है? एक परमाणु भी आत्माको तो नहीं मिलता। लेकिन ठीक है क्या करे? नहीं चलता इसलिये परिणामका इलाज करनेके लिये खा लेना पड़ता है वरना मेरे आत्माको इसमें कोई प्रयोजन नहीं है। जँचना-नहीं जँचना, खानेका पसन्द आना या नापसन्द होना सब नखरे बंद हो जायेंगे। क्योंकि अनिच्छासे ही तो करना है। (पेटमें) डाल दो भाई! थोड़ा २००-४०० ग्राम, जिसकी जितनी खुराक हो। पेटका गड्ढा ही तो भरना है। डाल दो! कहीं भी आपका उपयोग खिँचेगा ही नहीं न! उपयोगका खिँचाव हो तो विक्षेप होवे न! आँख बंद करके खा लो। डाल दिया फटाफट जाईये! इस प्रकार प्रत्येक कार्यमें। आत्माकी मुख्यता रखकर प्रत्येक कार्य होते हैं। ऐसी बात है। वरना परिणामकी चिकनाहट होगी ही होगी।

एक पानी पीने जाये तब गिलास साफ़ है या नहीं? पानीमें कचरा तो नहीं है? ऐसा-ऐसा ध्यान चला जायेगा। तृषा लगी है न तो पी लो तृषा छिपे उतना। इसमें क्या है? इसमें उपयोगको क्यों रोकके रखना? पूरा-पूरा अटका हुआ रहता है। छोटी-सी बातमें पूराका पूरा आत्मा अटक जाता है। आपको कोई ऐसा कहे कि, भाई! यह एक मुर्दा है इसकी आप सेवा करते रहो। सुबह, दोपहर, शाम – इसकी सेवा करते रहो। आपको रस कितना आयेगा? फिर हम जो कर रहे हैं वह क्या है? मुर्दोकी सेवा! और तो और ऊपरसे जीव इसमें रस लेता है। लेता है न रस? वरना है तो मुर्देकी सेवा करनेका कार्य। और वह भी परमात्मा होते हुए! परमात्माके पास मुर्देकी सेवा कराते हैं! ठीक! अब ऐसी सेवामें यदि रस आता हो उसे परमात्माको लक्ष्यगत् करनेकी बात कब सूझे?

मुमुक्षु :- इसीलिए पामर हो गया।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, जीव जड़त्वको प्राप्त होता है। जड़के परिचयसे और जड़के प्रेम

व रुचिसे जीव जड़त्वको अर्थात् अबोधदशाको प्राप्त होता है। एक जगह ऐसी बात है कि, जड़त्व यानी अबोधदशाको प्राप्त होता है। ५५वाँ पत्र (श्रीमद् राजचंद्र)

अबोधदशाको प्राप्त होना माने क्या? कि, जड़की रुचि उसकी बढ़ जाती है शरीरकी रूचि बढ़ जाती है और बोधकी उसे आसानीसे असर न हो वैसी दशाको प्राप्त होता है। उसे आत्माका बोध सुनने मिले कि, देख भाई! तुम तो ज्ञानस्वरूपी हो! सुख तेरे भीतरमें है! सुख कहीं बाहर नहीं है! तो भी उसके आत्मा पर असर नहीं पड़ता। ऐसी अबोधदशा जड़की रुचिके कारण हो जाती है। बोध स्पर्श नहीं करता उसे। बोधका प्रभाव नहीं पड़ता। बोधका प्रभाव ही उसपर नहीं पड़ता।

मुमुक्षु :– अतः रुचिको पलटना है।

पूज्य भाईश्री :– हाँ! उस रुचिको ख़तम करनी है। काफ़ी लोगोंकी ऐसी दशा देखी जाती है। व्यापारादिमें कमानेमें या खान–पीनमें इतना अधिक रस कि स्वादके पीछे पागल होते हैं। पागल माने क्या? कि, सेहत बिगड़ जाये तो भी खाना! फिर तो पागल ही कहें न उसे! आत्माकी बात रुचे नहीं, स्पर्श करे नहीं, ठीक! आत्माकी बात करनेवालेको बेवकूफ़ जानकर सोचते हैं कि, ये लोग ऐसा करते रहते हैं। खुदको तो जहाँ रस–रुचि हो वहीं जमे हुए रहते हैं।

(प्रवचनांश... श्री 'अध्यात्म पिपासा' भाग –६, प्रवचन नं.–१८६, प्रश्न–२४३, दि.–१२–१०–१९९७)

*

(पृष्ठ संख्या १३ से आगे...)

वर्तमानमें श्री कहानगुरुदेव शास्त्रोंके सूक्ष्म रहस्य खोलकर मुक्तिका मार्ग स्पष्ट रीतिसे समझा रहे हैं। उन्होंने अपने सातिशय ज्ञान एवं वाणी द्वारा तत्त्वका प्रकाशन करके भारतको जागृत किया है। गुरुदेवका अमाप उपकार है। इस कालमें ऐसे मार्ग समझानेवाले गुरुदेव मिले वह अहोभाग्य है। सातिशय गुणरत्नोंसे भरपूर गुरुदेवकी महिमा और उनके चरणकमलकी भक्ति अहोनिश अंतरमें रहो। (श्री'बहिनश्रीके वचनामृत' – ४३२)

आभार

'स्वानुभूतिप्रकाश' (अक्टूबर–२०२५, हिन्दी एवं गुजराती) के इस अंककी समर्पणराशि

श्रीमती नलिनीबहिन धर्मेन्द्रभाई वोरा, भावनगर

की ओरसे ट्रस्टको साभार प्राप्त हुई है।

अतएव यह पाठकोंको आत्मकल्याण हेतु भेजा जा रहा है।

करुणासागर 'पूज्य भाईश्री शशीभाई' की ९३वीं जन्म-जयंती महोत्सव पर धार्मिक कार्यक्रम

मुमुक्षुजीवों के परम तारणहार पूज्य भाईश्री शशीभाई की आगामी ९३वीं जन्म जयंती महोत्सव मार्गशीर्ष सुदी-४, दि. २४-११-२०२५ से मार्गशीर्ष सुदी-८, दि. २८-११-२०२५ पर्यंत अत्यंत आनंदोल्लासपूर्वक मनाया जायेगा। इस प्रसंग पर मंडल विधान पूजन, पूज्य भाईश्री के ऑडियो एवं विडीयो सी.डी. प्रवचन, पूज्य गुरुदेवश्री के विडीयो सी.डी. प्रवचन, पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन की तत्त्वचर्चा, भक्ति, सत्संग, सांस्कृतिक कार्यक्रम रहेंगे और दि. २७-११-२०२५ के दिन जिनेन्द्र रथयात्रा का कार्यक्रम रहेगा। इस प्रसंग पर आनेवाले मुमुक्षु निम्नलिखित पते पर पहुँचनेकी तारीख लिखें, जिससे उनकी आवास एवं भोजन की समुचित व्यवस्था हो सके।

संपर्क: श्री राजेन्द्र जैन, मो. ९८२५१५५०६६

कार्यक्रम स्थल :- श्री शशीप्रभु साधना-स्मृति मंदिर, प्लोट नं. १९४२-बी, शशीप्रभु चौक, रूपाणी सर्कल के पास, भावनगर-३६४००१

नया प्रकाशन (गुजराती)

'अध्यात्म पिपासा' (भाग-६)

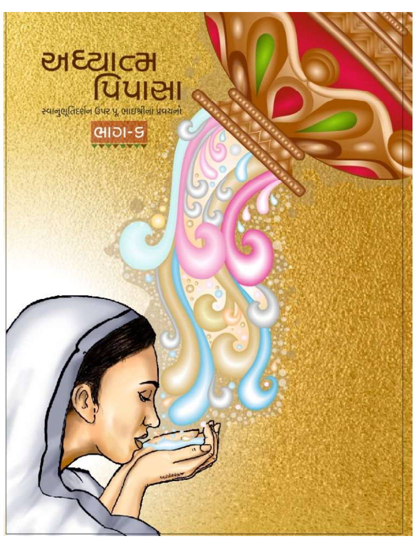

प्रशममूर्ति धन्यावतार पूज्य बहिनश्रीकी तत्त्वचर्चाका ग्रंथ 'स्वानुभूतिदर्शन' पर अध्यात्मयोगी पूज्य भाईश्री शशीभाई के प्रवचनों की श्रृंखला 'अध्यात्म पिपासा' भाग-६ (केवल गुजरातीमें) पूज्य भाईश्री की ९३वीं जन्म जयंतीके अवसर पर दि : २८-११-२०२५ को प्रकाशित किया जायेगा। जो मुमुक्षु गुजराती भाषा से परिचित हों और इसके स्वाध्याय के लिये इच्छुक हों वे अपनी प्रत दि: ३०-१०-२०२५ तक रजिस्टर करवा लें।

– श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट

श्री नीरव वोरा ९८२५०५२९१३

शासननायक अंतिम तीर्थाधिनाथ श्री महावीरप्रभुके निर्वाणकल्याणकके पावन प्रसंग पर उनके चरणोंमें वंदन करके, मंगलमय सुप्रभातकी प्राप्ति करके, अनंत जन्म–मरणकी श्रृंखलाका व्यवच्छेद करनेकी मंगलमय भावनाके दीप प्रज्वलित करके स्वानुभूतिप्रकाश परिवारके सर्व पाठकवर्गको दीपावलीकी शुभकामना !!

निर्वाणकल्याणक दिन पर दीपमालाएँ प्रगटाई इसलिये दीपावली कहते हैं। मूल शब्द तो 'दीपावली' है। आवली अर्थात् समूह। इतने सारे दियोंका समूह था कि, इस दिनको 'दीपावली महोत्सव' कहा गया। इसमें से अपभ्रंश होकर 'दिवाली' हो गया। और भीतरमें आत्माके असंख्य प्रदेशमें ज्ञानके दिये प्रकट होते हैं वह सम्यक्त्वरूप दीपावली है! स्वसंवेदनरूप दीपावली है!! 'गौतम गणधर भगवान'ने केवलज्ञानरूप दीपावली मनायी! दूसरे अनेक जीवोंने सम्यक्त्वादि प्राप्त करके असंख्य प्रदेशोंमें ज्ञानकी दीपावली मनायी। जो कि वास्तवमें दीपावली है। इस तरह सच्ची दीपावली तो वह है। ये जो पटाखे फोड़ते हैं वह दीपावली नहीं है। वह तो हिंसाका कारण है। अनेक जीव वातावरणमें होते हैं जो इसकी गंधमात्रसे मर जाते हैं। फिर आम लोग दीपावलीके साथ इसे जोड़ देते हैं।

भगवान महावीर चरणकमल

वैसे तो देवोंने इन्द्रोंने आकर अनेक दिये उस अवसर पर प्रज्वलित किये थे और साधकोंने अंतरमें ज्ञान–दिये प्रज्वलित किये थे!! इसलिये इस अवसर को दीपावलीके उत्सवके रूपमें आज २५०० साल पश्चात् भी मनाया जाता है। इसतरह आजका दिन महान है।

– पूज्य भाईश्री शशीभाई

(प्रवचनांश...श्री 'अध्यात्मसुधा' भाग–१, पन्ना–१)

REGISTERED NO. : BVHO - 253 / 2024-2026
RENEWED UPTO : 31/12/2026
R.N.I. NO. : 70640/97
Title Code : GUJHIN00241
Published : 10th of Every month at BHAV.
Posted at 10th of Every month at BHAV. RMS
Total Page : 20

'सत्पुरुषों का योगबल जगत का कल्याण करे'

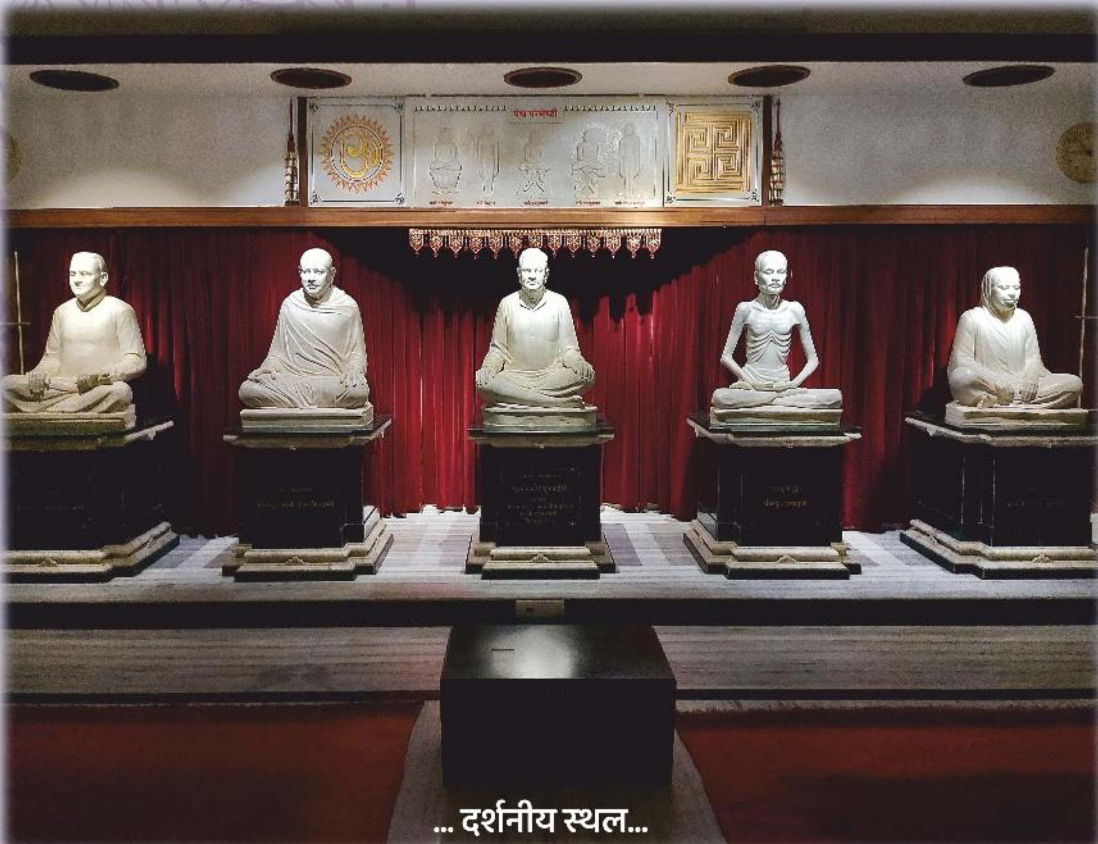

श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर
भावनगर

स्वत्वाधिकारी श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक श्री राजेन्द्र जैन द्वारा अजय ऑफसेट, १२-सी, बंसीधर मिल कम्पाउन्ड, बारडोलपुरा, अहमदाबाद-३८० ००४ से मुद्रित एवम् ५८० जूनी माणिकवाडी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर-३६४ ००१ से प्रकाशित
सम्पादक : श्री राजेन्द्र जैन -09825155066

Printed Edition : **3545**
Visit us at : http://www.satshrut.org

If undelivered please return to ...
Shri Shashiprabhu Sadhana Smruti Mandir
1942/B, Shashiprabhu Marg, Rupani,
Bhavnagar - 364 001

mayur process 9374825041